

श्री रामल-न
भूमि

श्री राम जन्म भूमि

समस्या एवं निदान

प्रस्तोता :—श्री यदुवंश सहाय, बानप्रस्थी

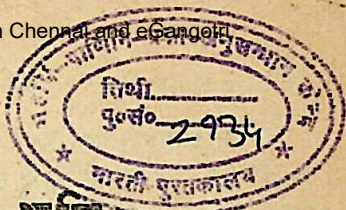
671, लालबाग, फैजाबाद

मूल्य रु० 1-50

—: अनुरोध :—

यदि आप 'हिन्दू' हैं, आपको राम और कृष्ण का वंशज होने का गर्व है और चाहते हैं कि आपकी अगली पीढ़ियाँ भी हिन्दू ही रहें, 'हिन्दुस्थान' में रहें, तो आप इस लेख की १०-२०-५० प्रतियाँ जीरोक्स करा कर आगे बढ़ाने की कृपा करें ।

—प्रस्तोता



राम जन्म भूमि

समस्या और निदान

6527

जैसा कि सभी को विदित है, अयोध्या से फैजाबाद जाते समय, सरयू के तट से लगभग 2 किलोमीटर पूर्व, हनुमानगढ़ी के पीछे, राम जन्मभूमि का पवित्र स्थान है। इसी स्थान पर एक तीन दरों वाला मिहराबदार भवन है, जिस पर तीन गुम्बद हैं। इसे बावरी मस्जिद कहा जाता है, यद्यपि मस्जिद के दो आवश्यक अंगो-अजान देने के लिए बनाई गई मीनार तथा नमाज अदा करने के पहले आवश्यक "वजू" के लिए किसी भी प्रकार के जल की व्यवस्था-बावली या कुंये-का नितान्त अभाव तथा नमाजेअव्वल की सूर्योदय पूर्व अजान देने वाले तथा अन्य आवश्यक परिचारकों के आवास की किसी भी व्यवस्था का अभाव संदेह उत्पन्न करता है। आस पास लगभग 2 किलोमीटर व्यास के क्षेत्र में नमाज पढ़ने के लिए आने वाले मुसलमानों की बस्ती का भी अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो यह मस्जिद नहीं है या फिर यह नितान्त हिन्दू क्षेत्र में विजय घोषणा का प्रतीक एक अपूर्ण मस्जिद है। इस बात की पुष्टि में एक किंवदन्ती का भी सहर्ष लिया जा सकता है जिसे पं० अमृत लाल नागर ने "मानस के हंस" तथा 'खंजन नयन' में स्वीकार किया है। यह भी सत्य है कि यहाँ कभी-कम से कम अयोध्या फैजाबाद के बृद्धों की स्मृति में-नमाज नहीं पढ़ी गयी है।

इस तीन दरों वाले भवन में ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी ईस्वी की कला शैली में उकेरे हुए, हिन्दू सथापत्य के चौदह कसीटी पत्थर के खम्भे लगे हुए हैं। (दो और खम्भे, एक द्वार तोरण पास ही मिलते हैं)। इसी भवन में फारसी भाषा और अरबी लिपि में लिखे दो शिलालेख हैं जिनसे पता चलता है कि यह बाबर के समय में उसके किसी सेनापति मीर बाकी द्वारा बनवाया गया था। इसमें बाबर को कलन्दर की उपाधि से अलंकृत किया गया है, जिसका सर्वमान्य अर्थ धर्म विजेता होता है। इन लेखों की तिथि 1528 ईस्वी हैं।

मगर पिछले 2-3 वर्षों में भारत के कुछ स्वनामधन्य इतिहासकारों ने, जो लम्बी-लम्बी सिगरेट पीते हुए आराम से द्विस्की के घूट ले ले कर मार्क्स के साम्यवाद की सौगन्ध खाने में गर्व का अनुभव करने में ही जीवन की सार्थकता समझते हैं, यह कहना प्रारम्भ किया है कि यहाँ राम का मंदिर नहीं था। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि राम कभी हुये ही नहीं, वे तो मात्र मिथकीय (Mythological) पात्र हैं। और फिर, आज की सभी समस्याओं को अंग्रेजी राज्य के मत्थे मढ़ने वाले राज-नेताओं के स्वर में स्वर मिलाते हुए, यह भी कहने से नहीं चूकते कि यह मंदिर मस्जिद विवाद अंग्रेजों की भेद नीति का ही फल है।

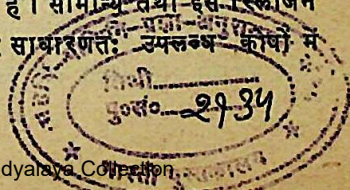
उपरोक्त इतिहासकारों को याद रखना चाहिए कि किसी भी देश के इतिहास एवं परम्परा को जानने समझने के लिए उस देश काल की भाषा साहित्य का पूर्ण ज्ञान तथा उसमें गहरी पैठ अत्यावश्यक है। मगर ये अंग्रेजी माध्यम से दीक्षित, योरोप के उच्छिष्ट भीजी, अनुवादों के सहारे काम चलाने वाले, तथाकथित मार्क्सवादी इतिहासकार तो वैदिक क्या, साधारण संस्कृत समझने की भी योग्यता नहीं रखते।

भारतीय परम्परा में रामायण और महाभारत इतिहास हैं—ठीक उसी प्रकार का इतिहास जैसा कि

18वीं-19वीं शताब्दी का आधुनिक इतिहास । पुराण का तात्पर्य, भारतीय परम्परा और इतिहास लेखन पद्धति में, प्राचीन इतिहास से हैं । मगर दुर्भाग्य से अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त, ग्रीक भाषा का शब्द माइपालोजी जिसका अर्थ यूनान में प्राचीन काल की अवृद्ध घटनाओं को सर्वसाधारण के लिए बोधाभ्य बनाने के लिए रची गयी कथाओं से था, को पुराणों के अनुवाद के लिये प्रयुक्त किया गया । और इसी के प्रभाव में इन इतिहासकारों ने सारे के सारे पुराणों को ही नहीं, वरन रामायण-महाभारत जैसे इस काल के आधुनिक इतिहास ग्रन्थों को भी मायपालोजी बना डाला, ठीक वैसे ही जैसे 'धर्म' को रिलीजन ।

अंग्रेजी ही नहीं, योरोप की तमाम आर्य भाषाओं में भी 'धर्म' जैसे व्यापक विचारों को समेटने वाला कोई शब्द नहीं हैं । यों तो धर्म शब्द को समझाने की कोई आवश्यकता नहीं हैं-किसी भी भारतीय भाषा का बोलने वाला कोई भी भारतवासी इसके अर्थ को, व्यक्त भले ही न कर सके, समझता अवश्य है । फिर भी सुविधा के लिए इसे परिभाषित करने का प्रयास किया जा रहा है ताकि इसके भ्रष्ट अनुवाद से उत्पन्न समस्याओं को भलीभांति समझा जा सके ।

धर्मों विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा-धर्म ही सम्पूर्ण जगत की नींव है । धारणाद धर्मं मित्याहु धर्मो धायरति प्रजा-वे सभी नियम, विधि-व्यवस्थायें जो समाज को स्थायित्व प्रदान करें, उनके समुच्चय को धर्म कहते हैं । इसे व्यक्ति या पदार्थ को "स्वभावगत विशेषता" भी कहा जा सकता है—जैसे अग्नि का धर्म जलना है और जल का धर्म शीतलता है । इसी अर्थ में भगवान श्री कृष्ण ने गीता में "स्वधर्मो निधनं श्रेयः" कहा था । हमारे धर्मशास्त्रों के अंग्रेजी अनुवादक धर्म के लिए कभी कभी Piety शब्द का प्रयोग करते हैं, पर यह तो मनु प्रोक्त धर्म के दस लक्षणों में से एक है । सामान्यतया इसे रिलीजन शब्द से अनूदित किया जाता है, मगर साधारणतः उपलब्ध कथों में



रिलीजन का अर्थ “आस्था और पूजा को विशेष पद्धति यथा ईसाई, मुस्लिम, बौद्ध, दिया गया है। यहां भी विश्व के अन्य प्रसिद्ध सम्प्रदायों के साथ “हिन्दू” का उल्लेख नहीं हुआ है। इस परिभाषा के अनुसार भी हिन्दू रिलीजन नहीं है—केवल ‘धर्म’ है—एक राष्ट्रीय जीवन पद्धति। अतः जब रिलीजन के विलोम सेकुलर शब्द को धर्मनिरपेक्षता कहा जाने लगता है, तब अनायास ही समाजिक विखण्डन का सूत्रपात हो जाता है।

यहां एक और बात कहना आयुक्त न होगा। “सम्प्रदाय” शब्द कुछ कुछ रिलीजन का प्रतिनिधित्व कर सकता है। मगर भारत को साम्प्रदायिकता विश्व के अन्य देशों को साम्प्रदायिकता से भिन्न रही है। भारत में मूल वैदिक धर्म को प्रवहमान धारा में समय समय पर आ मिलने वाले प्रदूषणों को दूर करने के लिए ही समय समय पर विभिन्न सम्प्रदायों का जन्म हुआ था। इस प्रकार, साम्प्रदायिकता प्रगति का लक्षण है। यहां अभी भी विभिन्न सम्प्रदायों के बीच उस तरह का रक्तरंजित विद्वेष नहीं पनपा जैसा कि ईसाई सम्प्रदाय के कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्टों और इस्लाम के शिया सुन्नी, बहावी अहमदिया आदि प्रभेदों के बीच पनपा। हमारे यहां जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त जैसे प्राचीन और सिख, कबीर, दादू, गोरख, ब्रह्म तथा आर्य समाज आदि अनेक सम्प्रदाय हुए मगर सभी को शास्त्रार्थ करने, अपनी बात कहने और प्रचार करने का सुरक्षित अधिकार रहा है। महर्षि स्वामी दयानन्द जैसे निर्भीक और कटु सत्य सहने से न चूकने वाले व्यक्ति को भी सुना गया और उन्हें हिन्दुओं ने नहीं, बरन मुसलमानों ने ही मारा या मरवाया था। इसके विपरीत, इण्डोनेशिया में जनमत सर्वेक्षण कराकर इस्लाम के पैगम्बर हजरत मुहम्मद को जनप्रियता को ग्यारहवीं सीढ़ी पर रखने को इस्लाम का अनादर माना गया और इस समाचार को प्रकाशित करने वाले समाचार पत्र को प्रतिबन्धित कर, उसके सम्पादक को बंदी बनया गया।

हमारे दुर्भाग्य से, विदेशी आक्रान्ताओं के आगमन के साथ साथ उनके आपसी साम्प्रदायिक विद्वेषों की काली छाया ने हमारे विभिन्न सम्प्रदायों को भी घेर लिया है। फिर भी, अभी तक तो हम विद्वेष की उस पराकाष्ठा तक नहीं पहुंच पाये हैं जैसा कि इन दो यावनी सम्प्रदायों में देखने में आई है। मगर यदि हमारे पिहांसन लालुप, सिद्धन्त, मर्यादा विहीन राजनेताओं की कृपा बनी रही तो वह दिन भी दूर नहीं है।

आधुनिक पुरातात्विक उत्खननों का सद्वर्भ लेते हुए यह भी कहा गया है कि यह अयोध्या, जहाँ ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी से पूर्व किसी सम्यता के चिन्ह नहीं मिले हैं, राम, जिन्हें परमारा त्रेता में हुआ मानती हैं, की अयोध्या नहीं हो सकती। मगर बाल्मीकीय रामायण, पवज्जलि कृत व्याकरण महाभाष्य, कालीदास महाभारत तथा सान बाहन नृपतियों के शिलालेखों से यह तो सिद्ध ही होता है कि ईस्वी सन के प्रारम्भिक वर्षों से राम मर्यादा पुरुषोत्तम—रामो विग्रहवान धर्म—माने जाते रहे हैं। और तभी से यही अयोध्या उनकी जन्मस्थली मानी जाती रही है। इस स्थिति में कम से कम दो सहस्र वर्षों की मान्यता को 1528 ईस्वी में इतने ही वर्षों बाद खण्डित किया जाना तो सिद्ध ही है।

प्रश्न मान्यता और उमसे जुड़ी आस्था से है। इतिहास सिद्ध व्यक्ति राम का जन्म कहीं भी हुआ हो—मध्य एशिया में या अफगानिस्तान में—मान्यता और आस्था के प्रतीक भगवान राम¹ की जन्म स्थली कम से कम दो सहस्राब्दियों से, यही अयोध्या रही है फिर हमारी ही

१— ऐश्वर्य, वीर्य अथवा कार्यशक्ति, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य—इन छह गुणों के समुच्चय की सज्ञा भग है। ये छहों अपने परिपूर्ण रूप में जिस महाशक्ति सम्पन्न पुरुषोत्तम में निवास करते हैं उसे भगवान कहा जाता है।

आस्था पर कोई प्रश्न चिन्ह क्यों ? हम तो, तर्क सम्मत न होने पर भी, मुसलमानों के पैगम्बर हजरत मुहम्मद के मिराज घोड़े पर बैठकर सातवें आसमान पर खुदा² से मिलने जाने की बात पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाते ?

इन तथाकथित इतिहासकारों द्वारा मन्दिर मस्जिद विवाद का अंग्रेजी की भेदनीति द्वारा उठाये जाने के आरोप का खण्डन तो वालम गीर नामा (पृष्ठ 630) में औरगजेब के इस कथन कि “इस स्थान पर दस सहस्र लोगों की हत्या करने के बाद ही अधिकार किया जा सका था” से ही हो जाती है। यह भी कहा जाता है कि रामभक्त बुलसीदास ने अपने समय से कुछ ही पूर्व हुए मन्दिर के इस ध्वंसन-विखण्डन का उल्लेख नहीं किया है—क्यों ? मगर क्या उन्होंने अकबर का ही उल्लेख किया है—जो कि उनका समसामयिक था ? वे तो राम रस में लीन ही रघुनाथ गाथा लिख रहे थे। उस प्रबल विचर्मी साम्राज्य के मध्याह्न आतप में आत्मलीन होकर रामज्योति को ढगाये रखना ही परम कर्तव्य था। उस समय विचर्मी अत्याचारों का जो कि सर्वसाधारण के लिये प्रत्यक्ष ही थे, साक्षात् उल्लेख न कर उन्हें परोक्ष रूप में रावण के अत्याचारों का पुनरावर्तन बताकर जन्मन में अत्याचार के प्रति घृणा की आग सुलगाये रखना ही उचित कर्तव्य था।

इधर कांग्रेस सरकार की नीति भी अधिकांशतः मुसलमान शिक्षा मंत्रियों—मुख्यतः तथाकथित समाजवादी हुमायूँ कवीर तथा प्राध्यापक नूरुलहसन के सफल दुष्प्रभाव में—मुसलमानों के अत्याचारों को भुला या हो सके तो सर्वथा नकार कर, भाई-भाई का नारा देने की रही है। इसीका प्रतिफल इन परजीवी इतिहासकारों में भी देखा जा

२- खुदा का सातवें आसमान पर होने की मान्यता वैदिक सप्त महा-व्याहृतियों को सप्तलोक का प्रतीक मानने और सातवीं व्याहृति-सत्य का ईश्वर स्वरूप होने की मान्यता का अपभ्रंश ही हैं।

सकता है । ये अकबर को तो असाम्प्रदायिक और सहिष्णु सिद्ध करते ही थे, अब औरंगजेब को भी दूध का थोड़ा सिद्ध करने में लगे हैं । कहा जाता है कि आगरे में अकबर के मकबरे के पास लगने वाला कैलाश के मेले की यात्रा तब तक सम्पूर्ण नहीं हो जाती जब तक कि दर्शनार्थी अकबर के सिकन्दरा स्थित मकबरे के डेहरी ने छू लें । इस प्रक्रिया को अकबर की सहिष्णु नीति का साफल्य मानने वालों को स्मरण रखना चाहिए कि कैलाश का मन्दिर नया है, जब कि पुराने मन्दिर को ध्वस्त कर उसी स्थान पर अकबर का मकबरा बनाया गया था । अभी भी गाँव गाँव में नई ड्योढ़ी पूजने के बाद भी पुरानी ड्योढ़ी पर महथा टेकने की अनिवार्य रीति प्रचलित है ।

इधर चित्रकूट में औरंगजेब के धन से मन्दिरों के निर्माण की चर्चा ज़ोरों पर है । अयोध्या के बारे में भी ऐसा ही कुछ प्रचार सुनने में आया है । कुछ वर्षों पूर्व मुझे देहरादून में एक गुब्बारा देखने का अवसर मिला था । उस पर अरबी लिपि में एक लेख खुदा है जिसके अनुसार उसे बनवाने के लिए औरंगजेब ने धन उपलब्ध कराया था । मगर खोज करने पर पता चला कि यह औरंगजेब की सदाशयता न होकर उसकी कूटनीति थी । गुरु तेग बहादुर और उनके दोनों पुत्रों के बलिदान के बाद लगी आग को बुझाने के लिए उसने गुरु के किसी संबंधी को धन देकर गुरु के शिष्यों में फूट डालने की असफल प्रयत्न ही किया था । इस प्रकार सदाशयता का यह उदाहरण साम्प्रदायिक नीति में कूटनीति का परिपाक ही सिद्ध होता है । यदि औरंगजेब काशी में विश्वनाथ का मंदिर तोड़ कर वहीं मस्जिद बनवाता है और दस सहस्र लोगों को काटकर अयोध्या के रामजन्म स्थान पर अधिकार करता है और दूसरी ओर पैसे देकर चित्रकूट में मंदिर भी बनवा देता है तो यह उसका अपने बुन्देले विरोधियों को शान्त करने के लिए उठाया गया कूटनीतिक पग ही मानना चाहिए ।

इसी प्रकार जजिया न लगाना तो सहिष्णुता मानी जा सकती थी मगर बार बार जजिया लगाकर उसे माफ करना वैसा ही है जैसे आधुनिक वित्तमंत्रियों का गैस के सिलेन्डरों का दाम 62 रुपये से 72 रुपये कर, बाद में 5 रुपये कम करके साधारण जनता की वाह वाही लूटने का प्रयत्न । इसे इनकी सदाशयता न समझकर कूटनीति ही माना जाना चाहिए ।

इस प्रकार के प्रतिबद्ध इतिहासकार भी अभी तक किसी महत्वपूर्ण मस्जिद के हिन्दुओं द्वारा ध्वस्त किये जाने का प्रमाण नहीं जुटा पाये हैं । मुस्लिम साम्प्रदायिकता के भारत सरकार द्वारा पोषित गढ़, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में 1970 में हुई मध्यकालीन शिलालेखों की गोष्ठी (प्रकाशित सन् 1974) में 'मध्यकालीन शिलालेखों में साम्प्रदायिक सहिष्णुता' नामक लेख के लेखक, जो अनेक वर्षों तक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की अरबी, फारसी अभिलेख-शाखा में कार्यरत रहे हैं, मुसलमान शासकों द्वारा मंदिरों का तोड़ा जाना, फिर किन्हीं कारणों से उनकी मरम्मत करवाना ही दिखा पाये हैं हिन्दुओं द्वारा मस्जिद ध्वस्त किये जाने का उल्लेख नहीं कर पाये हैं । इस आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि हिन्दू तो सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु था और यदाकदा मस्जिद बनवा भी देता था, यथा—लखनऊ, अमीनाबाद की पड़ाईन की मस्जिद, शाहदरा मस्जिद, मौलवीगंज की घनिया की मस्जिद, मगर मुसलमान मंदिर तोड़ते थे और कभी कभी किसी राजनीतिक, कूटनीतिक अथवा पारिवारिक बाध्यता से मंदिर बनवाते थे यथा—अलीगज का हनुमान मंदिर (जिसे सआदत खाँ की माँ जनाब आलिया बेगम, जो मूलतः हिन्दू महिला थी, ने बनवाया था) । इन सुधरवाने बनवाने के थोड़े से बहु प्रचारित उदाहरणों को एक तरफ रख, यदि हम उन

तमाम साक्ष्यों को देखें जहाँ मंदिर भ्रष्ट किये गये, परिवर्तित किये, तोड़े गये तो न केवल स्थिति की भयावहता का कुछ कुछ आभास अवश्य ही हो जायेगा, वरन उन तथाकथित अन्तराष्ट्रीयवादी इतिहासकारों की प्रतिबद्धता भी उजागर हो जायेगी । भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की पुरानी रिपोर्टें तो दूर, यदि हम 1952 से प्रारम्भ इण्डियन आर्क्योलॉजी ए रिव्यू के ही पृष्ठ उल्टे तो पता चल जायेगा कि लगभग प्रत्येक नगर में ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ मंदिरों के मूर्तित पत्थरों को मात्र उलट कर लगा देने से ही मंदिर को मस्जिद में बदल डाला गया है । (कन्नौज, शाहजहाँपुर, फतेहपुर) इससे यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि लगभग सभी ऊँचे अधिष्ठान पर बनी मस्जिदें अपने अन्दर किसी न किसी मंदिर के अवशेष दबाये हुए हैं । प्रारम्भिक दिनों में तो मुसलमान, 8 हमलावरों ने केवल थोड़ा सा ही फेर बदल कर हिन्दू स्थानों को मुसलमान बना डाला था, यथा—दिल्ली में कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद तथा कुतुबमीनार, अजमेर का अढ़ाईदिन का शोपड़ा तथा जीनपुर की अटाला मस्जिद ।

यह भी तर्क दिया जाता है कि अयोध्या में अनेक मंदिर हैं और सभी राम से सम्बद्ध हैं । उनमें से कुछ रामजन्मभूमि या स्थान के नाम से भी जाने जाते हैं । फिर उस तथाकथित मस्जिद वाले स्थान को ही मूल रामजन्म स्थान क्यों माना जाय ? यहाँ स्मरणीय है कि प्राचीन समय में जब भी युद्ध के बादल छा जाते थे आस्था का प्रतीक—चाहे वह मंदिर हो, ध्वज हो या फिर स्वयं सेनापति हो—के गिरने से योद्धाओं की आत्मश्रद्धा विगलित हो पराजय में बह जाती थी । राम की अयोध्या, विश्वनाथ की काशी तथा कृष्ण की मथुरा में, ये इतिहासकार बतावे कि, और किसका मंदिर तोड़ा जाने से आस्था छिन्न भिन्न हो सकती थी ? रही बात अयोध्या में अनेक स्थानों को जन्म स्थान कहे जाने की, तो इसमें केवल मूल मंदिर के नष्ट हो जाने पर नये नये

मंदिर बनवाना ही सिद्ध होता है । फिर वर्तमान भवन, जिसे बाबरी मस्जिद कहा जाता है, में लगे चौदह कसौटी के प्राचीन स्तम्भों का अस्तित्व तथा अन्य तथाकथित जन्मस्थानों में वैसे किसी प्राचीन अंश का अभाव भी इसीको मूल स्थान सिद्ध करता है । ईस्वी सन् 1976-77 में मस्जिद के पीछे किये गये उत्खनन में दवे मिले मंदिर के अवशेष भी यही सिद्ध करते हैं कि यहाँ मंदिर था जिसके ध्वंसावशेषों को समतल कर उसी के बास्तु खण्डों से मस्जिद का निर्माण बाबरी सेनापति की विजय घोषणा के रूप में हिन्दुओं को चिढ़ाने के लिए किया गया था । अयोध्या में राम के सिवाय और किसका इतना महत्वपूर्ण मंदिर हो सकता है जिसे ध्वस्त कर मस्जिद बनाई जाय, जिसके लिए अकबर को सीता रसोई का चबूतरा छोड़ने का आदेश देना पड़े और जिसे फिर से पाने के लिए औरंगजेब के समय में दस सहस्र हिन्दू अपने प्राणों की परम आहुति दें ?

इस सबसे निकलता स्वयं सिद्ध निष्कर्ष यही है कि इसी स्थल की मान्यता रामजन्मभूमि के रूप में थी जबकि इसे तोड़ कर मस्जिद के रूप में बाबर की विजय का स्मारक बनाने का प्रयास किया गया था ।

प्रश्न उठता है कि अब क्या किया जाये ? राजनेता साम्प्रदायिक सद्भाव की, सोहार्द, की दुहाई देते नहीं अघाते । जनता में भी दो दल हैं—हिन्दू और मुसलमान । हिन्दुओं में दो वर्ग हैं—एक वे जो कहते

हैं कि मंदिर तोड़कर उसके ऊपर मस्जिद बनाई गयी है अतः उस मस्जिद की अतिक्रमण को हटाकर यथा स्थिति स्वरूप पुनः मंदिर का निर्माण किया जाय । दूसरे वर्ग में वे सब हैं जो साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने के नाम पर, मस्जिदों को तोड़ने की भारतीय परम्परा की दुहाई देकर, मस्जिद को यथा-वत बनाये रखते हुए, उसी के पास राममंदिर बना देने की सलाह देते हैं । न्याय मूर्ति चतुष्टय पी० एन० भगवती, बी० आर० कृष्ण अय्यर, ए०एन० श्रीर तथा राजेन्द्र सच्चर जैसे कुछ सदाशय चिन्तक इस मस्जिद को राष्ट्रीय स्मारक घोषित करवाकर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा सुरक्षित करवाना चाहते हैं । (बछिया के) ताऊ चौधरी देवीलाल, जो कि अपने मौखिक अतिसार के लिए काफी ख्याति अर्जित कर चुके हैं, ने 27-10-90 को तो इसी स्थान पर मस्जिद के पास ही राम मंदिर, गुरु-द्वारा तथा गिरजाघर बनवाकर अनोखी बन्दरबांट का उदाहरण प्रस्तुत किया है । यह कैसा न्याय है, कैसी न्याय परायणता है, कैसी सदाशयता है कि हिन्दुओं की सम्पत्ति पर एक ऐतिहासिक अतिक्रमण के हटाने की दुहाई देने पर, उसके ऊपर दो और अतिक्रमण लाद दिये जाय ? क्या इसी न्याय बुद्धि से वे भारत की राजसत्ता के नियन्ता बनने का स्वप्न देखते हैं ?

मस्जिद को राष्ट्रीय स्मारक घोषित करवाने के इच्छुक चिन्तकों को एक प्रश्न का उत्तर देना चाहिए । राष्ट्रीय स्मारक क्यों बनाये जाते हैं ? राष्ट्र की उपलब्धियों को रेखांकित कर राष्ट्र को अनुशानित करने के लिए ही न ? या कि उसकी पराजयों को चिरस्मरणीय बनाने के लिए ? बाबरी मस्जिद अपने अस्तित्व से राष्ट्र को किस गौरवपूर्ण

क्षण की याद दिलायेगी ? मेरी तुच्छ बुद्धि में तो वह तथा उस जैसी अनेक मस्जिदें भारतीय जनमानस में साम्प्रदायिक सद्भाव एवं सौहार्द स्थापना के मार्ग में स्थाई और अनुलंघनीय बाधा स्वरूप हैं ।

मंदिर मस्जिद के सह अस्तित्व का दूसरा प्रस्ताव जो साधु समार्ज के एक वर्ग की सहिष्णु, अहिंसक आस्थाओं के साथ अन्य साम्प्रदायों को गौरव देकर उनके देव स्थानों को न तोड़ने की भारतीय परम्परा के अनुरूप ही है, भी मान्य नहीं हो सकता । राम जन्म स्थान मंदिर का मूल स्थान तो मस्जिद के नीचे ही है—दवा पड़ा । यदि मूल मूल स्थान नहीं मिलता तो अयोध्या ही क्या, कहीं भी मंदिर बने, वह रामजन्म स्थान मंदिर तो नहीं ही कहा जा सकेगा । मंदिर तो मूल स्थान पर ही बनना चाहिए । यह हमारी अस्मिता का प्रश्न है । और इसके लिए मस्जिद के अतिक्रमण को हटाना परमावश्यक है । हटाना ही होगा । यदि अतिक्रमणकर्ता यां अपने को उसका वारिस मानने वाले इस अतिक्रमण स्वरूप ढाँचे को स्वयं नहीं हटा लेंगे तो जैसा कि सदा सर्वदा, अतिक्रमण हटाते समय होता है, इस ढाँचे को, जिसे बहुसंख्य हिन्दुओं को तमाम पीढ़ी दर पीढ़ी की दुर्भावनायें जुड़ी हैं, उखाड़ फेंका जायेगा ।

साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापना के लिए मुस्लिम समाज को पहल करनी चाहिए, यदि वे अपने को राम और कृष्ण का वंशज माने, जो कि वे वास्तव में है भी, तो अपने पूर्व पुरुषों की गरिमा के लिए मस्जिद हटा लेनी चाहिए, यदि वे अपने को बरबर विदेशी आक्रान्ताओं का ही वंशज माने, तो

भी उन्हें अपने तथाकथित पूर्वजों द्वारा अपने बहुसंख्यक हिन्दू पड़ोसियों पर किये गये अतिचार का प्रतिकार कर अपनी सदाशयता और न्याय परायणता को परिचय देना ही चाहिए ।

यहाँ मुस्लिम सम्प्रदाय की रीति नीति की चर्चा अप्रसंगिक नहीं होगी । भारतीय मुस्लिम सम्प्रदाय के मान्य और अधिकारी विद्वानों ने अभी तक इस राममंदिर बावरी मस्जिद के ज्वलंत प्रश्न पर अपना मौन नहीं तोड़ा है । शेष मुस्लिम समाज, श्री मुख्तार अब्बास नकवी तथा उनके इन्डियन मुस्लिम यूथ कान्फ्रेंस के थोड़े से सहयोगियों को छोड़कर, अब्दुल्ला बुखारी जैसे इमामों तथा लोकतांत्रिक प्रणाली का दुरुपयोग तथा हिन्दुओं की सहिष्णुता तथा अहिंसक परम्परा का अनुचित लाभ उठाने वाले सैय्यद शाहाबुद्दीन, सुलेमान सैत, जी० एम० बनातबाबा, जफरयाव जीलानी तथा किछीछा शरीफ के गद्दीनशीन जैसे स्वयंभू मुस्लिम नेताओं के पीछे है । इनका मानना है कि प्रशासन ने श्री लालकृष्ण आडवानी की हिन्दू जागरण के उद्देश्य से की गयी शांत रथयात्रा को रोककर एक बहुत बड़ा साम्प्रदायिक दंगा होने से रोक लिया है (प्रतिदिन सांध्यदैनिक, लखनऊ 20-10-90) । यही लोग ईरान से फतवे लाते हैं कि मूमि के केन्द्र से गुम्बद की नोक की सीध में आसमान तक की जपह मस्जिद की, खुदा की, होती है और उस अधिकार की कोई भी व्यक्ति, शासन या संविधान निरस्त नहीं कर सकता । प्रधान मन्त्री द्वारा लाया गया अध्यादेश, जिसे इमाम बुखारी, शाहाबुद्दीन जैसे लोगों के विरोध के कारण ढाई दिन में ही वापस ले लिया गया, के विरोध में मुस्लिम समाज के इन्हीं मुखर नेताओं का कहना था कि यह मुस्लिम वैयक्तिक विधान का उल्लंघन करता है और धर्मदा सम्पत्ति तो किसी भी विधि विधान की व्यवस्था से परे है । यह एक भयंकर सिद्धान्त है । यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो उस संविधान को, जिसकी सीगन्ध खाते श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह तथा श्री मुलायम

सिंह नहीं अघाते, की ऐसी की तंसी हो जायेगी । इस समस्या से देश के सम्बिधान के व्याख्याता समझे—मैं तो मात्र इतना ही कहना चाहूंगा कि जब भूमि के केन्द्र और मस्जिद की नींव के बीच कोई और चीज आ जाये तो उसके आधार की व्याख्या कैसे होगी ? क्या पहले से चले आ रहे अधिकार को नकार कर, बाद के अधिकार को मान्यता दे दी जायेगी ? इससे विधि सम्बन्धी अनेक अव्यवस्थायें फैलेगी । कोई अतिक्रमण अन्याय नहीं कहा जा सकेगा । मुझे लगता है कि भूमि की नामि से लेकर आकाश तक की जगह खुदा की होने का सिद्धान्त वहीं मान्य होना चाहिए जहाँ मस्जिद सकबरा केवल कुबारी (अनधिकृत) भूमि पर बनाया गया हो । अयोध्या के रामजन्म भूमि मंदिर, मथुरा के कृष्ण जन्मभूमि मंदिर तथा काशी के विश्वनाथ मन्दिर तथा इस जैसे अनेक मन्दिरों को ध्वस्त करके बनाई गयी मस्जिदों के संबंध में यह तर्क नहीं लागू हो सकता ।

इतना ही नहीं, इमाम बुखारी, सैयद शहाबुद्दीन, सुलेमान संत, बी० एम० बन्नातवाला, जफरयाब जीलानी तथा मुतवल्ली कछीछवी इत्यादि सभी ने अब तक “महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, बाबर और अहमद शाह अब्दाली की संतानों को अपने पूर्वजों के अचूरे कार्यों को पूरा करने, बचे मन्दिरों को तोड़ने, के लिए ललंकारा है । इमाम बुखारी तथा सैयद शहाबुद्दीन ने तो एक बार इसी मन्दिर मस्जिद के विवाद के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा था कि जो सरकार थोड़े से सिखों के खालिस्तानी आन्दोलन को नहीं दबा पा रही है, वह मुसलमानों के लड़ने के लिए उड़ खड़े होने पर क्या कर सकेगी ? आश्चर्य है कि फिर भी हमारे राजनेताओं ने उन्हें साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने वाला और देशद्रोही नहीं माना ।

विड़ला-वाड़ला (जो कि बाबर का एक सेनापति था) लोघ-लोढ़ा-लोदी तथा सूर-सूरी की तरह गणवाचक नामक न होकर बुखारी नाम तो इमाम के अभी तक विदेशी होने की साक्षी देता है—इस प्रकार के देशद्रोही-राजद्रोही के तो भारत में रहने देने का कोई औचित्य ही नहीं है । मगर सैय्यद शहाबुद्दीन, सुलेमान सैत तथा बनातवाला जैसे स्वयंभू नेता यदि बीशे में खुली आँखों अपना मुह देखे तो उन्हें भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि वे महमूद, मुहम्मद, बाबर या आब्दाली की सन्तान न होकर, मात्र उनके सहभ्रमबिलम्बी ही हैं, सन्तान तो वे निश्चय ही श्री राम और श्री कृष्ण की हैं । उनका साम्प्रदायिक भावनाओं में बहकर अपने बाप बदलना उनका निजी मामला है । मगर उनका लोकतांत्रिक पद्धति में विश्वास जताते हुए ऐसे उदगार प्रकट करना उनकी लोकतांत्रिक पद्धति के प्रति बढमूल अनास्था ही प्रकट करता है ।

कुछ विचारकों ने हिन्दुओं को मुस्लिम जनता तक अपना दृष्टि-कोण पहुँचाने के लिये सुझाव दिया है कि “जाइये ! मुसलमानों में काम कीजिये” मगर जिस समाज का सोच जुम्मे की नभाज में इमाम की आतशी तकरीर से ढलता हो, उसे तार्किक रूप से समझाया कैसे जा सकता है ? जिस समाज के प्रबुद्ध, धर्म निरपेक्ष तथा साम्यवादी कहे जाने वाले रफीक जकारिया तथा एम० ए० हलीम मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनाने पर तो कुछ नहीं कहते मगर मस्जिद हटा कर मन्दिर बनाने की बात पर रक्त की अन्तिम बून्द तक लड़ने की बात करने लगते हैं, जिन्हें “नाम मिटाओ बाबर का” नारा उत्तेजित

करता है, विलान्यास स्थल की छतरी हटाये जाने का समाचार प्रकाशित करना हिंसा भड़काने वाला लगता है, अयोध्या में मरने वालों की सत्य से अत्यधिक कम, मगर सरकारी आँकड़ों से कुछ ज्यादा, संख्या प्रकाशित करना दंगा भड़काने का षडयन्त्र लगता है, उन्हें समझाया कैसे जा सकेगा ?

लोकतन्त्र के प्रति हिन्दुओं की आस्था और मुसलमानों की बद्धमूल अनास्था के रहते दोनों समुदायों के बीच संवाद कैसे स्थापित हो सकेगा ? विपक्ष से संवाद की स्थिति स्थापित करने के लिए जिन सामान्य नियमों का निर्धारण किया जाता है वे उन समुदायों की मूल भूत मान्यताओं, आस्थाओं से नियंत्रित होते हैं । अतः मुसलमानों की इन मान्यताओं को, आस्थाओं को समझना अत्यावश्यक है । यदि आप अपनी बात कहते जायें और विपक्षी अपनी बात पर अड़े रहें, तो वाद भले ही हो जावे, संवाद कभी नहीं हो सकता । युद्ध में आप तो अपनी मान्यता के अनुरूप सूर्यास्त के बाद शस्त्र रख दे और शत्रु उठाये रहें तो सिवाय आत्मघात के युद्ध का उद्देश्य नहीं पूरा हो सकता । भारत के इतिहास की सभी पराजयों के मूल में शौर्य, साहस तथा वीरता की कमी नहीं, बरन् शत्रु की रीति को न समझने की भूल ही रही है । सिकन्दर के अनुगामी इतिहासकारों ने लिखा है कि भारत में सेनायें युद्ध करती रहती थी और कृषक खेतों में काम करते रहते थे । ऐसे देश के वासी जब सिकन्दर से हारे तब उसकी “प्रतिज्ञा तोड़ने की प्रतिज्ञा” को न जानने समझने के कारण ही नष्ट हुए थे । कहते हैं कि पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गोरी को सत्रह बार हराया था और हर बार उसे क्षमा कर, वापस लौट जाने दिया । मगर जब अठारहवीं बार वह स्वयं हारा तो बंदी ही नहीं बना बरन काबुल ले जाया जाकर मारा भी गया । इस कृत्य के लिए शहाबुद्दीन गोरी को

कोई दोष नहीं दिया जा सकता। वह तो कुरान की शिक्षा कि काफिर से कमजोर पड़ने पर उसके पांव पकड़ कर शमा मांग लेनी चाहिए, मगर जब कभी वह कमजोर हो, उसपर हमला कर उसे समाप्त कर देना चाहिए, के अनुरूप ही आचरण कर रहा था। पृथ्वीराज चौहान की कमजोर शत्रु की मिथ्या प्रतिज्ञाओं को सत्य समझने, उनपर विश्वास करने की ही कूटनीतिक भूल थी। महाराज छत्रपति शिवा जी ने कभी मस्जिदों को नहीं तोड़ा, बन्दिनी मुसलमान स्त्री को माँ का सम्मान दिया मगर फल क्या हुआ? यश तो मिला मगर क्या खंडिरों का टूटना बन्द हुआ था कि हिन्दू स्त्रियों पर अत्याचार बंद हुए? कल का ही समाचार है कि बंगलादेश, जिसे कि हमने ही स्वतन्त्रता दिलाई, के ढाका नगर में ३०-१०-९० को अयोध्या की घटनाओं की प्रतिक्रिया में स्त्री पुरुषों पर अत्याचार हुए और लगभग 15 मन्दिर नष्ट कर दिये गये। उसी दिन जफरयाब जीलानी महोदय ने बंगला देश के अपने समर्थक बन्धुओं को शान्त रहने की अपील की थी क्योंकि बावरी मस्जिद सुरक्षित हैं। हमारे ही देश के अंग कश्मीर में 1986 में जिन 46 हिन्दू मन्दिरों को तोड़ा गया था, उनके लिए ही हमारी अल्पसंख्यकों की सुरक्षा को अपना सम्वैधानिक दायित्व मानने वाली सरकार ने क्या कर लिया था? वह तो केवल हमारा दिल जलाने के लिए रोज सुबह शाम दूरदर्शन पर "शमशे हरम और दिया सोमनाथ का" सुनाती रहती है। हम पहले भी अरुणा आसफ अली, सुभाषिनी अली, मीनाक्षी अहमद जैसे नाम सुन कर बहुत उद्वेलित नहीं होने थे और यथोचित सम्मान भी देते रहे हैं। मगर याद कीजिए कि अभी हाल ही में एक हिन्दू युवक से व्याही गयी मुसलमान स्त्री

को बलात्कार पूर्वक पाकिस्तान ले जाया गया था और न्यायालय के प्रत्यक्षीकरण के आदेश के उपरान्त भी भारत सरकार तथा उसका दूतावास कुछ न कर सका। बाद में सूचना आई थी कि वह स्त्री मर चुकी है। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि हमारी सद्भावना और सहिष्णुता हमें आततायियों के अत्याचार से बचाने में सर्वदा असमर्थ / असफल रही है।

इन सबका निष्कर्ष यही निकलता है कि युद्ध या सम्वाद शत्रु के मान्य नियमों को ध्यान में रखते हुए, उनके अधीन हो सकता है, आपकी अपमानी मान्यताओं से नहीं। जो स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों को मार कर, निहत्थों और असैनिकों को मारकर, देवालयों को गिराकर, पुस्तकालयों को क्षार कर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उनके साथ वैसा ही युद्ध किया जाना चाहिए। वे विजय कर, तलवार के बल पर धर्म परिवर्तन कराकर अपनी सख्या बढ़ाने में विश्वास करते हैं। यदि इनके साथ इन्हीं के नियमों के साथ युद्ध नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब हम अपनी सदाशयता, अहिंसा, सहिष्णुता की परम्परा का बोझा ढोते हुए इनसे युद्ध करने के लिए बचेंगे ही नहीं। अहिंसा साम्प्रदायिक सद्भाव के आदर्श अपने में श्रेष्ठ है, अनुवर्णीय है, मगर आक्रमण होने पर ये हथियार मोथरे सिद्ध होंगे। आजके नेताओं ने जिन महात्मा गांधी का नाम रट रट कर जनता को मुलावे में रखा है, उन्होंने भी कहा था कि अत्याचार करना पाप है, पर अत्याचार सहना तो उससे भी बड़ा पाप है। आततायी को आता देखकर ही उसको मार देने का उपदेश हमारे ही शास्त्र देते रहे हैं। आततायिनमायान्तं हन्यादेवविचारयन्। नाततायिवचे दोषो हन्तुर्भहति कश्चन्। (मनु 8:350)

ईस्वी सन् 1920-1944 के बीच बढ़ते हुए साम्प्रदायिक विद्वेष

के कारण ही 1947 में देश का विभाजन हुआ था। पर मुस्लिम समुदाय के लिए अलग स्वतन्त्र देश की मांग करने वालों में अग्रणी उत्तर भारत के तमाम मुसलमान अभी भी यहीं हैं जबकि पाकिस्तान से सभी हिन्दू अपनी सारी स्थावर सम्पत्ति को वहीं छोड़कर यहाँ शरणार्थी होकर आ गये थे। इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि शिक्षित एवं समृद्ध मुसलमानों के अधिसंख्य परिवारों के अनेक योग्य व्यक्ति तो पाकिस्तान जाकर वहाँ की India Baiting नीति के कर्णधार बने और उनके बचे हुए वृद्ध और अकुशल या कम कुशल युवक यहीं रह कर अपनी अविभाजित सम्पत्ति को Evacuee-property होने से बचाते हुए, आज स्वतन्त्र भारत में और भी अधिक वैभव जुटाकर, देश की व्यवस्था में ऊँचे ऊँचे पदों पर रहते हुए एक और पाकिस्तान बनवाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन भारतीय मुसलमानों से, जिनके अपने रक्त सम्बन्धी पाकिस्तान में हैं, भारत के प्रति निष्ठा रखने की बात सोचना अनुचित ही नहीं, अवास्तविक भी है। यों भी, इस्लाम में देश के प्रति आस्था के लिए कोई स्थान नहीं है। उनकी सारी निष्ठा सम्प्रदाय—इस्लाम—व उसके पैगम्बर हजरत मुहम्मद के देश—अरब—के प्रति ही है। उस देश के प्रति तो उनकी निष्ठा हो ही नहीं सकती जहाँ उन्हीं के अनुसार कुफ्र का व्यापक विस्तार हो।

इस सवाद हीनता की स्थिति में राज्य नेता (राष्ट्र नेता नहीं) तथा प्रशासन क्या कर रहा है ? सिंह द्वय भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवानी की रथयात्रा को साम्प्रदायिक वैमनस्य को बढ़ाने वाला मानते हैं। मगर जहाँ तक श्री आडवानी के भाषणों का प्रश्न है, उन्होंने अपने किसी भी भाषण में मुसलमानों के प्रति कोई विषवमन नहीं किया है। इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह ने रथयात्रा के प्रति मुसलमानों की

तरफ से ही वह विष उगता हैं कि सारे देश का साम्प्रदायिक वातावरण विषाक्त हो उठा है। यह भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि मुसलमानों में असुरक्षा की कथित भावना भरने में भी श्री मुलायम सिंह की सद्भावना रैलियों का अत्याधिक योगदान रहा है। इन सद्भावना रैलियों के आयोजन में भारतीय कम्युनिस्टों की असंदिग्ध भूमिका रही है। मार्क्स के निरीश्वरवादी तथा जन्म इत्यादि के सभी भेद भावों को नकार कर, केवल आर्थिक आधार पर ही समाज को दो वर्गों में बांटने के सिद्धान्त के ध्वजाधारी ये भारतीय कम्युनिस्ट अभी तक अपनी जन्मना प्राप्त श्रद्धा को भुला नहीं पाये हैं और आज भी अपने पूर्वजों द्वारा वेद विद्या के पठन पाठन से प्राप्त उपाधियों का निर्वाह प्रयोग करते हुए, अपने आमिजात्य का उद्घोष करने से नहीं चूकते। मगर अपने उन्हीं पूर्वजों को गाली देकर अपनी राजनीतिक साख भी बनाये रखना चाहते हैं। अभी उस दिन दूरदर्शन पर प्रचारित उत्तर प्रदेश तथा बिहार के जगदीश नारायण त्रिपाठी तथा झां की अभिव्यक्ति या फैजाबाद के मित्रसेन यादव का अयोध्या की परिक्रमा में भाग लेकर बंदी बनना इन दोगलों की दो मुही नीति को बजागर करते हैं। महात्मागांधी के अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध हुए जनान्दोलन में भी इनकी मीरजापुरी भूमिका सर्वविदित है तथा अभी हाल में मण्डल आयोग के पक्ष में इनका अपने दादा गुरु मार्क्स के आर्थिक आधार को नकार कर, जातिगत भेद का समर्थन करना भी इनकी इसी दोगली नीति का अंश है।

श्री आडवानी की हिन्दू जागरण के पवित्र उद्देश से की गयी रथयात्रा के मार्ग में हिंसा नहीं हुई। वह हुई कानपुर और करनाल गज (गोण्डा) में, जिन स्थानों का श्री आडवानी की रथयात्रा के मार्ग से दूर दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। प्रतिवर्ष इलाहाबाद तथा कानपुर में तथा सन् 1988 में फैजाबाद तथा भागलपुर में हुए दंगों के समय किस

आडवानी की रथयात्रा हुई थी ? श्री मुलायम सिंह का कान-पुर के भाषण में मुसलमानों का अवैध हथियार जमा करने को उचित ठहराया जाना तथा इसी दीपावली के दौरान फैजाबाद के हिन्दुओं से उनके वैध हथियार जमा करवा लेना किस न्यायपूर्ण शासन पद्धति के अनुरूप है ?

श्रीमती इन्दिरा गांधी के काल में प्रतिबद्ध न्यायपालिका के नारे से पूर्व उनके और उनके पिता श्री पं० जवाहर लाल नेहरू के समय में हुई तमाम न्यायिक जाँचों में दंगों का प्रारम्भ करने का दोषी कभी भी हिन्दुओं को नहीं पाया गया था। शुरुआत सर्वदा मुसलमानों की तरफ से ही होती रही है। गोरी के सन्दर्भ में उद्धृत कुरान वचन के अनुरूप जब जब तैयारी कर मुसलमानों ने अपने को बलवान समझा है, उन्होंने दंगों का सूत्रपात किया है। इन दंगों में हानि-घन जन दोनों को हिन्दुओं की ही होती रही है। मगर पिछले दशक में हिन्दू भी संगठित होकर आक्रमण का प्रतिरोध करने लगे हैं और इस प्रतिरोध में हताहत मुसलमानों पर राज्य के कर्णधारों का बरदहस्त रहता है। और उन्हें ही अधिकतम आर्थिक सहायता राशि उपलब्ध कराकर शासक दल—कोई भी हो—ने अपना वोट बैंक सुदृढ़ करने का प्रयास किया है।

यह तो कभी कभी ही होता है कि विजयादशमी, दीपावली, होली की शोभा यात्रायें मुसलमानों के अलम के झुलूसों के टकरा जायें। सन 1988 में फैजाबाद तथा अभी हाल में हुए करनैलगंज (गोण्डा) के दंगों को ही लें। फैजाबाद में विजयादशमी के बाद भरतमिलाप की शोभा यात्रा पर वजीरगंज के एक सम्मानित लगने वाले व्यक्ति के घर से बम फेंका गया था। इस बार भी करनैलगंज (गोण्डा) में दुर्गा पूजा-विजयादशमी की उत्साहपूर्ण किन्तु शान्त शोभायात्रा पर मुस्लिम

यतीमखाने से पथराव कर दंगों का सूत्रपात किया गया । क्यों ? क्या यह सुदूर मध्य प्रदेश और बिहार होकर उत्तर प्रदेश में आ रही श्री अडवाणी की हिन्दू जागरण के पवित्र उद्देश्य से हो रही शान्तिपूर्ण रथयात्रा को बदनाम करके रूकवाने या रोकने के लिए मुन्नन खाँ द्वारा अपने मित्र श्री मुलायम सिंह को भाषणों में उगलने के लिए सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया गया, विष नहीं था ? दोनों बार किस असुरक्षा की भावना से प्रेरित होकर मुसलमानों ने शाक्रमण में पहल की थी ? यह असुरक्षा की भावना न होकर वास्तव में हिन्दुओं की सुरक्षात्मक व्यवस्था की परीक्षा करने की इच्छा वाली रणनीति ही अधिक लगती है ।

मगर इस लोकतांत्रिक राज्य के नेता हैं कि सर्वदा बहुसंख्यक वर्ग को ही अलोकतांत्रिक ढंग से दबाते रहते हैं । जब कभी हिन्दुओं और मुसलमानों की शोभायात्रा के मार्ग के टकराव का प्रश्न उठा है, तब तब मुसलमानों की बात को सर्वोपरि वरीयता देकर, हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाई गयी है । इससे एक ओर तो मुसलमानों का मनोबल ऊँचा हुआ है, दूसरी ओर हिन्दुओं में उपेक्षित होने का भाव बढ़ा है । यहाँ अकबर इलाहाबादी का एक शेर याद आता है—

मुझी को सब कहते हैं कि रख नीची नजर आनी ।

कोई उनसे नहीं कहता न निकलो यूँ अयां हीकर ॥

आज श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह तथा श्री मुलायम सिंह दोनों—संविधान और “आईन” की बात करते नहीं अघाते । एक ने तो जिस संविधान की झीगन्ध लेकर गद्दी संभाली है, उसके विरुद्ध जाने में, उसकी अवहेलना करने में, अपनी असमर्थता जताई है । दूसरी ओर श्री मुलायम सिंह लोगों की (वास्तव में मुसलमानों की, जिन्होंने उन्हें कायदेआजम बना डाला है) जानमाल मस्जिद की रक्षा करना अपना सन्त्रास्तिक दायित्व मानते हैं । मगर क्या इन दोनों में से कोई बजाने

का कण्ट करेगा कि क्या संविधान कोई वेद, बाइबिल या कुरान की तरह खुदाई, अपरिवर्तनीय ग्रन्थ है ? जिस संविधान में पिछले बयालिस वर्षों में राज्य नेताओं ने अपनी सुविधानुसार अनगिनत परिवर्तन किये हैं, उसकी पवित्रता की दुहाई देना कुछ कुछ वैसा ही लगता है जैसा कि देश्या के सतीत्व की रक्षा करने की बात । फिर संविधान की पवित्रता की रक्षा का दायित्व क्या केवल बहुसंख्यकों का ही है । जब कि अल्प-संख्यक मुसलमान अपने को संविधान के परिसीमन से मुक्त मानते हैं ?

रही “आईन” की बात, उसकी व्याख्याता न्यायपालिका की बात, सो वह भी जगजाहिर है । वाराणसी में एक कब्रिस्तान के लिए दो समुदायों में चला विवाद विभिन्न न्यायालयों में होता हुआ सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचा । वहाँ उसका निर्णय तो हुआ, मगर आज सात-आठ वर्षों के अन्तराल के बाद भी क्या कार्यपालिका उस निर्णय को लागू करवा पाई है ? जब जब सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय को कार्यान्वित कराने का प्रयत्न किया गया, तब तब दंगे भड़का कर बाधाएँ खड़ी की गयीं और आज भी सर्वोच्च न्यायालय का वह “आईन” सम्मत निर्णय, रावण की अशोक वाटिका में बन्दिनी सीता की तरह, बस्ते में बंद, किसी राम की प्रतीक्षा कर रहा है ।

शाहवानों प्रकरण में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विरोध में तमाम जुलूस, सभाएँ और आन्दोलन हुए और उनके दबाव में आकर श्री राबीव गाँधी को संविधान में परिवर्तन करना पड़ा था । तब न्यायपालिका की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए प्रतिवद्धता दिखाकर उन्होंने नहीं कहा गया कि “मुस्लिम वैयक्तिक विधान में हस्त-

क्षेप न करने हुए भी, जब कभी राष्ट्र की न्यायपालिका से न्याय पाने के लिए याचना की जायेगी, तो वैसा ही न्याय किया जायेगा जैसा कि किसी भी नागरिक के साथ किया जाता। नागरिक नागरिक में सम्प्रदाय, व्यवसाय, पद आदि का भेद करना सम्भव न होगा। जिन्हें यह व्यवस्था मान्य न हो वे या तो न्याय मांगने न आवे या फिर देश छोड़कर चले जायें।”

जब श्री के० एम० पाण्डेय, जनपद न्यायधीश, फंजाबाद ने विश्वनाथ प्रताप सिंह तथा श्री मुलायम सिंह द्वारा मान्य ‘आईन’ की धाराओं के ही अन्तर्गत राम जन्मभूमि मन्दिर का ताला खोलने का निर्णय लिया था, तब उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में पुनर्निरीक्षण के लिए आवेदन के निस्तार की प्रतीक्षा न करके, देशभर में आन्दोलन कर, दंगे करा कर, अव्यवस्था क्यों फैलाई गयी थी? क्या शास्त्र बल की धमकी देकर मुसलमान अपनी असुरक्षा की भावना प्रकट कर रहे थे?

फिर उसी जज, श्री के० एम० पाण्डेय को उनकी वरिष्ठता और योग्यता के अनुरूप गथा उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों की संस्तुतियों के होते हुए भी, श्री मुलायम सिंह ने “मुसलमानों को अच्छा न लगेगा” कह कर प्रोन्नति क्यों रोकी? क्या वे यह चाहते हैं कि राजनेताओं की ही तरह, न्यायधीश भी, न्यायिक विधि विधानों का उल्लंघन कर नेताओं के वोट बैंकों की रुचि का ध्यान रख कर ही निर्णय दें? क्या उन्होंने यह न्यायपालिका के प्रति अपनी श्रद्धा के अतिरेक के कारण किया था? जज भी मनुष्य ही हैं, लाभ हानि सोचते समझते हैं। एक बार ऐसा होने पर क्या कोई न्यायधीश कभी निष्पक्ष, किन्तु शासकों को तथा उनके वोट बैंकों को अरुचिकर, निर्णय कर अपनी हानि

कराने का साहस जुटा पायेगा ? क्या यह प्रतिबद्ध न्यायपालिका की ओर बढ़ा हुआ एक और चरण नहीं है ? क्या यह उच्च न्यायालय में दीर्घकाल से लम्बित राममंदिर बाबरी मस्जिद विवाद के निर्णायक न्यायाधीशों के लिए कुटिल इंगित नहीं हैं ?

सिंह द्वय बार बार अपने राजनीतिक बयानों में न्यायपालिका और न्याय की दुहाई देते रहे हैं, पर दोनों ही अपने कार्यों से न्यायपालिका के मन्तव्यों का खुला विरोध कर उसकी प्रतिष्ठा पर कुठाराघात करने से चूके भी नहीं हैं। प्रधान मंत्री की न्यायपालिका परायणता का एक उदाहरण तो तब मिला था जब उन्होंने, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मण्डल आयोग की संस्तुतियों को लागू करने के सरकारी निर्णय को अंतिम निर्णय होने तक स्थगित रखने के आदेश पर अपना प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था कि “अब पीछे लौटने का सवाल ही नहीं है, खून खरावा हो जायेगा।”

फिर सर्वोच्च न्यायालय के श्री अडवानी की रथयात्रा को न रोकने के आदेश के बाद भी समस्तीपुर, बिहार में उनकी रथयात्रा रोक दी गयी। क्या रथयात्रा के समस्तीपुर आने पर कोई दंगा हुआ था, अशान्ति फैली थी ? यदि नहीं, तो सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के बावजूद श्री अडवानी की यात्रा को रोकना क्या न्यायपालिका की अवहेलना नहीं था ?

बार बार उच्च न्यायालय के तीर्थयात्रियों को अयोध्या जाने देने, उन्हें हिरासत में न लेने के आदेश के बावजूद भी अयोध्या फंजावाद में कर्फ्यू क्यों लगाया गया, परम्परा से चली आ रही परिक्रमार्थों की राह में बाधाएँ क्यों खड़ी की गयी, तीर्थयात्रियों को बंदी क्यों बनाया गया तथा आवागमन के सारे साधन, जिन पर प्रशासन का निरंकुश एकाधिकार है, क्यों रोके गये ? क्या यह न्यायपालिका की अवहेलना

नहीं है ? यदि यह न्यायपालिका का सम्मान है, तो उसका अपमान क्या होगा ?

मुसलमान अपने को राष्ट्रीय संविधान से बाहर मानते हैं, न्यायपालिका के निर्णयों का खुलकर विरोध करते हैं, और अपनी बात मनवाने के लिए राजनेताओं को संविधान में परिवर्तन करने के लिए बाध्य करते हैं, प्रशासन मुसलमानों को अचिकर लगने वाले निर्णय कर्तार न्यायिक अधिकारियों को प्रत्यक्ष रूप से दण्डित करता है, मुसलमानों के तुष्टीकरण के लिए अपनी न्यायपूर्ण मांगों के लिए प्रदर्शन करने वाले निहत्थे हिन्दुओं पर सौ सौ चक्र गोली बरसाता है, और स्वयं को अचिकर निर्णयों की खुली अवहेलना करता है, तब क्यों गरीब की लुगाई बेचारे हिन्दुओं पर ही समझौता करने या न्यायालय के अधिकार से बाहर के मन्तव्यों पर भी न्यायालय का निर्णय स्वीकार करने की बाध्यता थोपी जा रही है ? समझौते के लिए आवश्यक अंशदान देने के लिए, दुर्योधन की तरह ही, मुसलमान प्रस्तुत नहीं है, न्यायपालिका का स्वमत के विरुद्ध कोई निर्णय उन्हें मान्य नहीं है, तब बचा क्या ? मुसलमानों के पक्ष में दिया गया निर्णय मानना ?

यह कैसी न्याय परायणता है ? यदि यह अल्पसंख्यकों तथा अहिंसात्मक परम्परा का मादक राग सुनाकर सुलाये गये अधिसंख्य हिन्दुओं के वोटों पर छलबल से अधिकार करने की कुचेष्टा नहीं है तो फिर क्या हैं ?

वही उस दिन जयपुर के दंगों में मरे चालीस व्यक्तियों की विधवाओं और अनाथ बच्चों के लिए श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह घड़ियाली आंसू बहा रहे थे। मगर उसी दिन के समाचार पत्रों में पंजाब में तैतीस व्यक्तियों के मारे जाने का समाचार छपा था और निश्चय ही वे हिन्दू रहे होंगे। पंजाब में रोज ही कुछ न कुछ हिन्दू मारे जाते हैं,

कश्मीर में भी कुछ मारे जाते हैं, कुछ भगाये जाते हैं और भारत के विभिन्न नगरों में अनाथों की तरह रहने को बाध्य हो रहे हैं। क्या उनके लिए भी श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के पास कुछ आंसू हैं? बंगला देश से भगाये गये चकमा तथा पाकिस्तान में सिन्ध से भागकर राजस्थान आ रहे हिन्दू शरणार्थी भी क्या उनके आंसुओं से सिंचित हो, उनकी सहानुभूति पा सकेंगे?

सिंहद्वय बार बार अपना बोट बैंक सुदृढ़ करने के लिए भड़काने वाले भाषण दे रहे हैं। प्रधान मंत्री का बार बार यह कहना कि यदि हिन्दुओं की राम मंदिर सम्बंधी बात मान ली गयी तो सिखों, नागाओं और छोटा नागपुर के ईसाइयों तथा कश्मीर के मुसलमानों के पृथक्तावादी आतंकवादियों को कैसे रोका जा सकेगा। यह भी मण्डल आयोग के सम्बन्ध में खून खराबे की बात की तरह ही, अल्पसंख्यकों के पृथक्तावाद को तार्किक आधार प्रदान कर, उनके मसीहा कायदे आजम बनने की कुटिल और घृणित चेष्टा नहीं है, तो क्या है? यदि अयोध्या में निहत्थे रामभक्तों को ढवाने में लगाये गये सैन्य बल का चतुर्थांश भी पंजाब, कश्मीर तथा अन्य अलगाववादियों को रोकने के लिए लगाया गया होता तो समस्या, समस्या न रहती।

अल्पसंख्यों की असुरक्षा की भावना को बढ़ावा देकर उनके जान माल की रक्षा के नाम पर बहुसंख्यों को न्याय से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, नहीं किया जा सकेगा। अभी-अभी अयोध्या में हुए कारसेवा के आन्दोलन में निशस्त्र हिन्दुओं पर अर्द्धसैनिक तथा सैनिक बल लगाकर गोली बरसाने वाली तथा बाद में मुस्लिम हठवादिता के प्रतीक, बाघरी मस्जिद एक्शन कमेटी के सदस्यों तथा

फैजाबाद की टाटशाह मस्जिद के हिन्दुओं के विरुद्ध आग उगलने वाले इमाम को तथाकथित बावरी मस्जिद को सुरक्षित दिखाकर, अपनी अल्पसंख्यक परस्ती का प्रमाण पत्र लेने वाला प्रशासन “क्या बहुसंख्यकों पर चार सौ बसठ वर्ष पूर्व हुए अत्याचार के प्रतिकार के दावे को “लिमिटेसन का कानून” लगाकर दबायेगा ? क्या अवधि बीत जाने के कारण न्याय पाने के अधिकार से किसी भी व्यक्ति अथवा समुदाय को वंचित कर दिया जाना न्याय है ? तब फिर आजादी की उस लड़ाई का क्या महत्व रह जायेगा जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी गयी थी ? या उस आन्दोलन का क्या महत्व रह जायेगा जो हिन्दू समाज के शूद्रों को न्याय दिलाने के लिए लड़ा जाना चाहिए और लड़ा भी जा रहा है । शूद्रों के साथ सामाजिक अन्याय और भारत के साथ विदेशियों के अन्याय को भी बहुत लम्बी अवधि बीत चुकी है, फिर इन्हें न्याय दिलाने की बात क्यों की जा रही है या की कयी है ?”

श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह कहते हैं कि सरकार द्वारा अधिगृहीत भूमि पर मन्दिर बना लो, विवादास्पद भूमि के लिए न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करें । श्री जफरयाब जिलानी कहते हैं कि यदि न्यायालय झगड़े को जगह को मंदिर की जगह बताता है तो मस्जिद हटा ली जायेगी क्योंकि टबकी शरीयत में झगड़े की जगह पर मस्जिद नहीं बन सकती । असदुल्ला खां गालिव के शब्दों में—“कोन न मर जाय इस सादगी पे, लड़ते हैं और हाथ में तलवार नहीं ।” मौलाना जिलानी के इसी मोलेपन पर तो हजारों हिन्दुओं की जाने पिछले हजार सालों से निष्ठा-वर होती रही हैं और इस साल देवोत्थनी एकादशी के दिन से आज तक हौ रही हैं ।

जीलानी साहब की शरीयत के इस विधान को तो भारत के तमाम मंदिरों को बलात्कार पूर्वक तोड़कर उनके स्थान पर बनी मस्जिदें ही झुठला रही हैं। फिर जिस स्थान पर बावरी मस्जिद बनी है, वह सब ओर से हिन्दू मंदिर के घिरे क्षेत्र हैं। मुसलमानों का उस भूमि पर अधिकार कैसा ? क्या बाबर का आक्रमण भी माइथालोजी है ? क्या मंदिर का तोड़ा जाना और उसके अवशेषों पर, उसी के स्तम्भों का प्रयोग करते हुए मस्जिद जैसे भवन का निर्माण केवल दृग्भ्रम ही है ? क्या बाबर ने उस भूमि तथा उस पर बने मंदिर को हिन्दुओं से ज़य कर लिया था ? यदि नहीं तो बाबर या किसी को भी क्या अधिकार था कि किसी के मंदिर को हटाकर अपना या अपने खुदा का घर बना लें ? लुटेरे बाबर को लूट के माल को किसी को (आज के मुसलमानों को) देने का ही क्या अधिकार था ? यदि लुटेरे द्वारा लूटे हुए माल को किसी को देने पर पाने वाले का अधिकार न्याय है, तो आज क्यों चोरी या लूट का माल, खरीदकर भी, रखने को अपराध माना जाता है, पाया गया माल जमा कर लिया जाता है और जिसके पास पाया जाता है, उसे भी अपराध का भागीदार मानकर दण्ड दिया जाता है। इसमें न्यायालय क्या निर्णय करेगा ?

सरकारी और गैर सरकारी दोनों नेताओं ने सोमनाथ मन्दिर के पुनर्निर्माण में लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल के कर्तृत्व की चर्चा की है। पर दोनों ही पक्ष यह भूल जाते हैं कि उस समय के नेताओं ने—डा० राजेंद्र प्रसाद, पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, यहाँ तक कि महात्मा गाँधी ने भी—सोमनाथ मंदिर के विवाद में

कभी भी न्यायपालिका को नहीं घसीटा। उन्होंने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्कालीन महामिदेशक सर मार्टीनर हवीलर की संस्तुति पर श्री 'बालकृष्ण थापर, जो कि कुछ वर्षों पूर्व ही महानिदेशक के पद से सेवा निवृत्त हुए हैं, को उत्खनन कराकर मंदिर/मस्जिद की पूर्वापरता जानने के लिए भेजा था। जो पहले से था, वही रहना चाहिए, बाद का जो कुछ भी है, अतिक्रमण है, बलात्कार है, उसे हटाना ही चाहिये। अयोध्या में इसकी पुष्टि ऊपर कहे गये 1976-77 के उत्खनन से, वर्तमान तथाकथित मस्जिद में लगे पुराने मंदिर के स्तम्भों से, हो चुकी है। न्यायपालिका से बाबर के आक्रांता होने-न होने का अथवा पुरातात्विक साक्ष्यों के साधार निराधार होने का निर्णय मांगना न्यायपालिका के साथ अन्याय ही है।

“क्या गुलामी के एक ऐसे प्रतीक को हम आज भी कुछ लोगों की हठवादिता के कारण बनाये रखेंगे जो एक ऐसे पवित्र स्थल को ध्वस्त करके बनाया गया है जिसके गौरव की रक्षा करने में हजारों हजारों हिन्दुओं के प्राण जा चुके हैं और आज भी जा रहे हैं। अगर प्रतीकों का कोई मूल्य नहीं होता तो क्यों हटाई गयी महारानी विक्टोरिया तथा आर्ज पंचम की तमाम मूर्तियाँ? क्यों बदल दिये गये उन तमाम सड़कों के नाम जो अंग्रेज वाइसरायों या अन्य हमलावरों के नाम पर रखे गये थे?”

लोकतन्त्र में तो सभी नागरिकों के समान अधिकार होते हैं, फिर यदि अल्पसंख्यक समाज बहुसंख्यक समाज से अधिक और विशेष अधिकारों की माँग करता है तो उसका लोकतांत्रिक औचित्य क्या है? आखिर इस देश में सभी नागरिकों के लिए समान विधि व्यवस्था क्यों नहीं लागू की जाती? काश्मीरी मुसलमानों को संविधान की धारा 370 के अंतर्गत विशेषाधिकार क्यों दिये गये

हैं ? असम में तथा बंगाल के सीमावर्ती जिलों में सुनियोजित ढंग से आने या बुलाये जाने वाले बंगलादेशी मुसलमान घुसपैठियों को 1947 की कालसीमा के बाद भी गनी खाँ चौधरी तथा इसी तरह के विभिन्न राजनीतिक दलों में घुसे हुए पंचमार्गी मुसलमान नेताओं से होने वाली अपनी सम्भावित स्वार्थ सिद्धि की लालसा में प्रथम क्यों दिये जाने के लिए केन्द्र सरकार अड़ी है ? कश्मीर से 1947-48 में पाकिस्तान गये मुसलमानों को वापस बुलाकर भारतीय काश्मीर की नागरिकता क्यों प्रदान की गयी ? स्वतन्त्र भारत में अहमदशाह आब्दाली की पानीपत विजय का स्मारक बनवाने के लिए अफगान सरकार तथा उसके राजदूत से सम्पर्क साधने तथा पत्र व्यवहार करने वाले क्यों मंत्री और गर्वनर के पद पर प्रतिष्ठित किये जाते रहे हैं ?

क्या जनसंख्या की दिन दूनी, रात चौगुनी वृद्धि राष्ट्रीय समस्या नहीं हैं ? यदि नहीं हैं तो इसका इतना प्रचार क्यों ? और यदि है तो हिन्दू, मुसलमान या इसाई—प्रत्येक नागरिक को दो से अधिक सन्तान उत्पन्न करने पर संवैधानिक प्रतिबन्ध क्यों नहीं है ? मुसलमान और इसाई तो अपनी साम्प्रदायिक आस्थाओं के नाम पर परिवार नियोजन की योजना से बाहर निकल लेते हैं, मगर हिन्दू इसे स्वीकार कर अपने संख्या बल में कमी कर रहे हैं। कुरान में कहा गया है कि जो एक बार इस्लाम स्वीकार कर चुका हो, उसे फिर से इस्लाम छोड़ने को आज्ञा नहीं है, उसका बच कर दिया जाना चाहिए। इस आज्ञा के होते हुए भी, मुसलमान और इसाईयों की अबाध वर्धन परिवर्तन कराकर अपनी संख्या बढ़ाने पर प्रतिबन्ध क्यों नहीं लगाया जाता ?

यदि शासन और नागरिकों को अल्पसंख्यकों के वोट बैंकों को सुरक्षित रख सत्ता में किसी भी प्रकार बने रहने की स्वार्थी प्रवृत्ति एने ही

बनी रही तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दुस्तान में ही हिन्दू अल्पसंख्यक हो उठेगा—कुछ स्थानीय मुसलमानों—ईसाइयों की जनसंख्या में अनियंत्रित वृद्धि के कारण, कुछ धर्म परिवर्तन कराकर अपनी संख्या वृद्धि कराने के कारण, कुछ पाकिस्तान तथा बंगला देश से सुनियोजित ढंग से घुसाये गये मुसलमानों के कारण, जिन्हें यहाँ तुरन्त प्रश्रय मिल जाता है ।

यह सोचकर भी भय लगता है कि यदि 1947 में देश का विभाजन न हुआ होता तो थखण्ड भारत में आज 63 करोड़ हिन्दुओं की तुलना में पाकिस्तान के 15 करोड़, बंगलादेश के 20 करोड़ तथा भारत के ही 20 करोड़—कुल मिलाकर 55 करोड़ मुसलमान होते और यदि 63:20 होने पर भी हिन्दू इतना असहाय हो उठा है कि अयोध्या में राम मंदिर के लिए उसे, उसके ही भाइयों के हाथों, अपना रक्त बहाना पड़ा तो उस सम्भावित परिस्थिति की भयावहता की कल्पना कीजिये जब हिन्दू और मुसलमानों की संख्या बल लगभग समान हो उठेगा ।

इसी संदर्भ में श्री विद्वनाथ प्रताप सिंह का कहना है कि वे मंदिर के स्थान पर देश (या अपनी गद्दी ?) बचाना चाहते हैं याद कीजिये । मगर यह भी याद रखना चाहिए कि देश या राष्ट्र मिट्टी के किसी टुकड़े को नहीं कहते, वह तो जन जन के हृदय में एक मिट्टी टुकड़े से जुड़ी भावनाओं, उसके प्रति श्रद्धा और आस्था को कहते हैं । कहा जाता है कि भक्त हैं तो भगवान है । इसी प्रकार मंदिर है, तो हिन्दू भी है और हिन्दू के होने से ही हिन्दुस्थान भी है । अतः जब तक हिन्दू बहुसंख्यक है, समर्थ है, तभी तक देश है, उसके प्रति श्रद्धा है । जहाँ वह अल्पसंख्यक हुआ, वह मिटा दिया

जायेगा और तब वह मिट्टी का टुकड़ा तो रहेगा, मगर उसके प्रति श्रद्धा करने वाले न रहेंगे, हिन्दुस्थान न रहेगा, पाकिस्तान हो जायेगा । इस छोटी सी, मगर सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट, बात को श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह और उन जैसे नेता क्यों नहीं समझते ? या फिर अपनी तात्कालिक लाभ की आशा से उपजी मोहान्धता के कारण समझना नहीं चाहते ?

श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा सरकारी नियंत्रण से मुक्त किये गये दूरदर्शन में इधर उधर कुछ दिनों में बहु प्रचारित वाक्य “काफिले बसते गये, हिन्दोस्तां बनता गया” उनके दृष्टहीन इतिहास बोध का ही परिचायक है । वास्तव में सत्य तो यह है कि “काफिले बसते गये, हिन्दोस्तान मिटता या सिमटता गया ।” अब समय आ गया है कि हिन्दू, ढाई हजार वर्षों के काफिले बसने की प्रक्रिया—आक्रमण, तज्जनित पराधीनता तथा उसके फलस्वरूप हुए अत्याचारों से पाठ सीखते हुए, अपनी कुम्भकर्णी महानिद्रा से उत्पन्न आलस्य को झाड़ फेंके और चैतन्य होकर, अत्याचार करने को पाप मानने की अपनी सनातन परम्परा को न छोड़ते हुए भी, अत्याचार सहने को महापाप मानना प्रारम्भ कर दें और “शठेशाठ्यं समाचरेत्” महावाक्य को कठोरता से जीवन में उतारने को कटिबद्ध हो जाये । अभी कल ही दूरदर्शन पर दिखाये गये समाचार में बताया गया था कि उत्तर प्रदेश को अभी भी पाकिस्तान बनाने का स्वप्न देखने वाले तीन मुसलमान मंत्रियों—आजम खाँ, मुख्तार अनीस तथा सईदुल हसन—ने विदेश के मुसलमानों को बावरी मस्जिद के सुरक्षित होने का आश्वासन देकर उत्तेजित न होने की सलाह दी थी । मानों, हिन्दुओं को बावरी

मसिजद की वर्तमान स्थिति में हुए किसी भी परिवर्तन पर, चारों ओर के उत्तेजित मुस्लिम देशों के हस्तक्षेप की धमकी सुना रहे हो। सम्भवतः इसी धमकी से भयभीत हो, नये प्रधानमन्त्री श्री चन्द्र शेखर ने जर्मन साप्ताहिक को दी गयी भेट वार्ता में कहा है कि यदि भारत के अल्पसंख्यकों की आशंकाओं का निवारण नहीं किया गया, और उनको संतुष्ट नहीं किया गया तो भारतीय समाज के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जायेगा और किसी भी तरह का टकराव भारतीय समाज को नष्ट कर देगा।

इस भय से अब हमें उबरना ही होगा। अब हमें निश्चय करना ही होगा कि क्या हम खूटे में बांधे कसाई के बकरे की तरह थरथराते हुए खड़े रह कर गर्दन पर छूरा फिरने की प्रतीक्षा करेंगे या फिर अपने अस्तित्व की रक्षा में अडिग भाव से खड़े होकर लड़ते हुए मरना चाहेंगे। पहले रास्ते में मृत्यु निश्चित है। मगर अपमान की। दूसरे रास्ते में विजय की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है। यदि मृत्यु आ जायेगी भी तो वह गौरवपूर्ण होगी। याद रखना होगा कि अन्तिम युद्ध के आड़े समय में हिन्दुओं की मदद के लिए कोई भी न आयेगा। ईसाई और मुसलमान दोनों ही शताब्दियों से हिन्दुओं को, साधु द्वारा सिंह बनायी गयी चुहिया की तरह के मनोभाव से, मिटाने का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रयत्न करते रहे हैं। इन दोनों साम्प्रदायिक समुदायों के पीछे विदेशी शक्तियाँ भी हैं। याद होगा कि जब बिहार मध्य प्रदेश के एक विदेशी पादरी को राष्ट्रद्रोहात्मक गतिविधियों के

कारण निकाले जाने के आदेश हुए थे तब कितनी हाय तोवा मची थी । भारत के प्रथम स्वतन्त्र युद्ध (1857) के दौरान विदेशी साम्राज्य की रक्षा के लिए मरे अंग्रेजों के कब्रिस्तानों को किस दबाव में फिर से भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित करवाया गया था ?

मगर हिन्दुओं को तो केवल अपने अदम्य साहसयुक्त और धैर्य शील आत्मा तथा सर्वनियन्ता परमपिता परमात्मा का ही सहारा लेना होगा ।

हमें मुसलमानों को ही नहीं, ईसाइयों को भी बताना होगा कि उन्हें भारत में हिन्दुओं का पूर्ण संरक्षण प्राप्त है, उनके सामान्य नागरिकों वाले वे सभी अधिकार सुरक्षित हैं जो बहुसंख्यक हिन्दुओं को मिले हुए हैं । मगर यदि वे कोई विशेषाधिकार पाना चाहते हैं तो वे उन्हें यहां नहीं मिल सकेंगे । यदि यह व्यवस्था उन्हें सचिकर न लगे तो वे कहीं भी, जहाँ उनकी इच्छा की पूर्ति हो सके, चले जाने के लिए स्वतन्त्र है ।

अनेक बार इन नेताओं ने मस्जिद हटाने या गिराने की बात से राम के अप्रसन्न होने की चर्चा कर, हिन्दुओं को राम के चरित्र से सीख लेने को भी सलाह दी है । मगर दुःख तो यही है कि हिन्दुओं ने राम की महिमा को ठीक से समझा नहीं है । राम की वास्तविक महिमा तो ऋषियों पर राक्षसी अत्याचार करने वाली ताड़का और सुबाहु का वध करने, इन्द्रध्वजिता अहिल्या को समाज में प्रतिष्ठा दिलाकर पुनरुज्जीवित करने, सुग्रीव पत्नी रुमा पर बलात्कार करने वाले का वध करने तथा सीता का अपमान का प्रयास करने के दण्ड स्वरूप लका को जलाकर रावण को समस्त बधु बान्धवों सहित यमपुरी भेज, सीता को लौटा लाने में ही थी । अब हमें राम चरित्र से शिक्षा ग्रहण कर, अपनी तमाम

अहिल्याओं, रमाओं और सीताओं को अपमानित होने से बचाने तथा संस्कृति की रक्षा के लिए लंका को जला कर शत्रुओं का नाश करना ही होगा।

अब हमें स्पष्ट रूप से कह देना होगा कि यदि कहीं भी किसी ने हिन्दू को सताया या किसी मंदिर को भ्रष्ट किया तो हम, विधि की अटल निश्चयात्मकता से उस अत्याचारी के यहाँ के रहने वाले वस्तुओं को, मस्जिद गिरजाघर को नष्ट कर देंगे। यह किसी बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर नहीं किया जायेगा—अपने ऊपर हुए अत्याचारों का बदला लेने के लिए तो हमें सारे विश्व में ही आग लगा देनी होगी—यह मात्र न्यायिक प्रक्रिया का दण्ड विधान होगा जिसेका उद्देश्य दुष्ट को भविष्य में दुष्टता करने से वर्जित करता ही होता है।

हम तोड़े गये मंदिरों का बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर तमाम मस्जिदों, मजारों, मकबरों को तोड़ने नहीं जा रहे हैं। मगर हमें अपनी अस्मिता, अपने राष्ट्र गौरव प्रतीक चिन्ह स्वरूप कुछ स्थानों को तो वापस लेकर उन पर बनी अतिक्रमण तथा विजय घोषणा स्वरूप मस्जिदों मजारों को हटाकर उन स्थानों के गौरव के अनुरूप मंदिर बनाने ही होंगे और इन स्थानों में अयोध्या की राम जन्मभूमि, मथुरा की कृष्ण जन्मभूमि तथा काशी के विश्वनाथ मन्दिर का महत्व सर्वोपरि हैं।

श्री जफरयाब जीलानी ने अभी हाल में वक्तव्य दिया है कि यदि

मन्दिर बनाना ही चाहते हैं तो हिन्दुओं को लोकतांत्रिक पद्धति से ऐसी सरकार को चुनकर लाना चाहिए जो मन्दिर बनवा दें। हिन्दुओं को इस चुनौती को, जीवन मरण का प्रश्न समझकर, स्वीकार करना ही होगा। उन्हें मन्दिर निर्माण के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को—चाहे वह अल्पसंख्यकों की ओर से आये या फिर उनके वोटों के लिए उनका हित साधन में तत्पर सरकार की ओर से आये—द्विस्त करने के लिए कटिबद्ध होना ही होगा।

यह हमारी अस्मिता का प्रश्न है।

हिन्दुओं, सावधान !

॥ समाप्त ॥

प्रस्तोता—

(यदुवंश सहाय वानप्रस्थी)

671, लालबाग, फैजाबाद।



मुद्रक :—

अनन्त प्रिंटिंग प्रेस, १७१, रिकार्डगंज—कानपुर

फोन नं०-३६३७